मधु-ज्वाल

माणकचंद रामपुरिया

रामपुरिया प्रकाशन, कलकत्ता
१६५६

रामपुरिया प्रकाशन
२, उडबर्न रोड,
कलकत्ता-२०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य—२)

मुद्रक—ज्ञानपीठ (प्राइवेट) लि०;
पटना-४

समर्पण

ऐ चाँद तुम्हारी किरणों को उच्छ्वास सिन्धु का अर्पित है।
दर्शन की प्यासी आँखों को आकुल 'मधु-ज्वाल' समर्पित है॥

—कवि

दो शब्द

आज भौतिकवाद के जबड़ों के बीच फंसा संसार बुरी तरह छटपटा रहा है। नित्य नये विनाशक उपादानों की सृष्टि होती है और संहार अपना तांडव करता है। न केवल सभ्यता और संस्कृति ही खतरे में है, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि के अस्तित्व के प्रति ही शंका पैदा हो गई है।

ऐसे समय में मानव-मस्तिष्क की चेतना और अन्तर की भावनाएं जैसे कुण्ठित हो गयी हैं, सद्वृत्ति और सुविचार जैसे प्रागैतिहासिक काल की चीज बन गए हैं। फिर रागात्मक वृत्तियों का पोषण और संवर्द्धन सम्भव कैसे हो? किन्तु हृदय है कि मानता ही नहीं, सुमधुर स्वर-लहरियाँ न सही, संवेदना की सिसकियाँ तो उससे निकलती ही हैं। यदि ये उसाँसें काव्य का रूप धारण कर फूट पड़ें, तो मैं उसे श्रेय की सृष्टि ही मानता हूं। माना कि आज काव्य का युग नहीं। अंगारों पर खड़े होकर साम-वेद का सम्मोहन नहीं सुहाता, फिर भी मानव ने जन्म से जो कुछ पाया है, प्रकृति से जो सीखा है, उसे वह कैसे भूल जाए।

तूफान की गोद में भी शान्ति का निवास है, झंझा के आँचल में भी शीतल वायु के झोंके छिपे हैं। प्रकाश का प्रतिरूप ही तो छाया है और यही सब बातें मेरी बुद्धि को झकझोरती हैं तो पाता हूं कि मानवता मर नहीं सकती, बस, उसे नया विश्वास चाहिए और इसी विश्वास के साथ मैं गीतों का सृजन करता हूं।

काव्य एक कला है। पर, जीवन की जो कला मनुष्य को जीवन से अलग कर एकांगी बना दे, वह कला नहीं हो सकती, विरक्ति भले ही हो। छायावादी मूर्च्छना और रहस्यवादी बेसुदी का युग भी बीत गया है। आज तो हमें धरती के गीत गाने हैं, आदमी के अन्तर की पीड़ा की कहानी कहनी है। कोरी कल्पना मात्र ही तो कवि की थाती नहीं, वह भी तो उसी धरती का प्राणी है, फिर भला वह इसके सुख-दुख को कैसे भूल जाए।

अस्तु, मैंने जो कुछ छन्दों में सँजोया है वह मेरी अपनी बात नहीं, समस्त सृष्टि की कहानी है और इस विश्वास के साथ कि विज्ञ पाठक इसे पसन्द करेंगे, मैं अपनी यह प्रथम पुष्पांजलि भेंट कर रहा हूँ।

—माणकचंद रामपुरिया





कवि

-: प्रस्तावना :-

'मधुज्वाल' यद्यपि प्रत्यक्षतः विरोधी प्रतीत होता है किन्तु लक्षणा की सौन्दर्य-पूर्ण व्याख्या के द्वारा इसके अर्थ में जो गंभीर माधुर्य और दाह छिपा हुआ है उसने इस संग्रह के नाम को अत्यन्त सार्थक कर दिया है। काव्य शास्त्रियों ने जहाँ एक ओर काव्य का उद्देश्य कान्तासम्मत उपदेश बताया है, वहीं उन्होंने स्पष्ट रूप से निर्देश किया है कि वह शिवेतर अर्थात् अकल्याण को दूर करने में भी सहायक होता है और अपने इस गुण से वह पाठक या श्रोता के मन में सद्यः परिनिर्वृत्ति या आत्मानन्द का भी बोध कराता है। यह तल्लीनता की अवस्था, जहाँ साधना में समाधि की अवस्था है, वहीं ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यानन्द की अत्यन्त रसमयी भाव-भूमि है, जिसे मधुमती भूमिका अथवा दार्शनिक शब्दों में भूमा भी कह सकते हैं और जिसे प्राप्त करने के लिए उदात्त साधक निर्विघ्न और निःशंक होकर चेष्टा किया करते हैं।

कवि-कर्म केवल किसी भाव या विषय को पद्य में बाँधना भर नहीं है। उसका उद्देश्य अपने कविकर्म के द्वारा दूसरे के हृदय में ऐसा विभावन उत्पन्न करना है, जिसके द्वारा वह सरलता के साथ उसके हृदय को, आत्मा को स्पर्श करके उसे भी उन्हीं भावों के साथ तन्मय कर दे। जब तक कवि में यह क्षमता नहीं होती, तब तक उसका सम्पूर्ण कविकर्म निरर्थक हो जाता है। इस शक्ति की साधना के लिए कवि में व्यापक अनुभूति और विश्वमानवता में व्याप्त सुख, दुःख, ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, भय, ग्लानि, सहानुभूति, दया, ममता आदि सभी सात्विक भावों के साथ हृदय का सूक्ष्म तादात्म्य होना नितांत आवश्यक है। मन की यह स्थिति दो दशाओं में संभव है— एक तो उस समय जब सहसा किसी एक दुर्घटना या गंभीर घटना के फलस्वरूप कवि उससे इतना प्रभावित हो जाय कि वह प्रभाव स्वयं काव्य बनकर उसके कंठ से इस प्रकार फूट पड़े जैसे क्रौंच-बध से प्रभावित होकर महाकवि बाल्मीकि का शोक भी श्लोक बनकर फूट पड़ा। दूसरी अवस्था वह है जब कवि स्वतः संवेदन-शील होकर अपने भावों को इस प्रकार लोक-भावना के साथ सात्विक बना ले कि वह दूसरों के हर्ष और विषाद से विभावित होकर स्वयं उस भावधारा में निमग्न हो जाय। 'मधुज्वाल' के पीछे यह दूसरे प्रकार का भाव-संस्कार ही विशेष रूप से प्रेरक रहा है।

श्री माणकचन्द रामपुरिया बीकानेर के लब्धप्रतिष्ठ, अत्यन्त सम्पन्न परिवार के व्यवसायी, किन्तु भावनाशील और कवि-हृदय तरुण हैं। जिस भौतिक समृद्धि की छाया में उनका आरम्भ से आज तक पोषण हुआ है, उस अवस्था में साधारणतः

काव्य के अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ करते; क्योंकि काव्य की उत्पत्ति के लिए जिस भावजागरण की अपेक्षा होती है, वह वैभव के आतंक से कभी सिर उठाने का अवसर ही नहीं पाता, इसलिये यह विलक्षण संयोग है कि अपने व्यवसायी जीवन में भी समय निकाल कर वे सरस्वती की उपासना के लिए पर्याप्त समय निकाल लेते हैं। केवल इतना ही नहीं, काव्य की सृष्टि के लिए जो हार्दिक उपादान सहानुभूति के रूप में आवश्यक है, उसका वैभव भी इनके हृदय में पूर्ण रूप से विद्यमान है। यही कारण है कि इन्होंने अपनी रचनाओं में युग की पीड़ा का वह चीत्कार अत्यन्त सहृदयता के साथ सुना है जो प्रायः धनमद की साधना करने वालों को कभी रुपये की स्वरलहरी के सम्मुख कर्णगोचर ही नहीं होता। इसी सहृदयता के कारण अपने जग-प्रपंच में उन्होंने अत्यन्त निर्भीकता के साथ कहा है :—

ठग रहे इस भूमि को सब,
यह मनुजता रो रही है,
नाश का विष-बीज कोई
शक्ति भू पर बो रही है।

इस क्रान्तिपूर्ण हाहाकार को भली प्रकार समझ कर कवि ने अत्यन्त दृढ़ शब्दों में सन्देश दिया है :—

क्रांति के हर तार पर प्रिय,
शांति का सरगम जगाओ,
सभ्यता का सूर्य चमके,
एक दीपक-राग गाओ।

इस भाव को कवि ने यहीं तक परिचित करके नहीं छोड़ा है, उसने स्वयं इस साधना में सक्रिय रुचि दिखाते हुए, अपने प्रदीप्त उत्साह का परिचय देते हुए, कहा है :—

झंझा के झोंकों में भी,
आशा का दीप जलाते,
हम सत्य-शिखर पर चढ़कर
सपनों का साज सजाते।

कल्पना में ही सही, किन्तु यह सन्देश उस जन-जागरण के लिए कितना महत्वपूर्ण उद्बोधन है जिसके लिए आज स्वतंत्र भारत का प्रत्येक जागरूक विचारक हृदय मे सचेष्ट है। उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर कवि कह रहा है :—

आज है आह्वान मेरे,
गीत के अभिमान जागो,
निर्बलों के बल उपेक्षित,
शक्ति के वरदान जागो।

यही आह्वान और उद्बोधन और एक पग बढ़ाकर 'साधना की लौ जगाओ' में कवि ललकार कर कहता है :—

अब न रुकने का समय है,
साधना की लौ जगाओ,
बढ़ चलो कर्त्तव्य-पथ पर,
जयति-जय के गीत गाओ।

इस मौखिक उद्बोधन मात्र से कवि को संतोष नहीं होता है, होना भी नहीं चाहिए। युग चाहता है सक्रिय कार्य जिसे हम दिखलाकर अपनी सफलता का सबल प्रमाण विश्व-मानवता के सम्मुख उपस्थित करके उनका पथ-प्रदर्शन करें। इसीलिए जनतन्त्र-पर्व के मंगलमय अवसर पर वह केवल उल्लास और उत्साह दिखाकर मौन रहना ही पर्याप्त नहीं समझता। वह निर्माण की मंगल-कामना भी करता है :—

संबल धरती को मिले सहज,
जब अंतस्तल में जगे ज्वाल,
जिस ओर बढ़ो तुम युग-नायक,
रुक जाय भयाकुल प्रलयकाल।

जहाँ एक ओर अपने देश को समृद्ध, सशक्त और सतेज बनाने की प्रबल कामना कवि के हृदय-सागर में लहरें मार रही है, वहीं वह अपने चारों ओर घिरी हुई दलित, पीड़ित, निर्बल और निरीह मानवता के प्रति भी सजग होकर अपने हृदय के मधुस्रोत से उसकी व्यथा को समझकर शीतल करने के लिए अग्रदूत की भाँति प्रयत्नशील है। इसी धारा में कवि ने उन फेरीवालों को भी सहानुभूति की आँखों से देखा है, जिनकी यह दशा है :—

तन को ढकने की बात दूर,
खाने भर को भी अन्न नहीं,
माँ के प्यारे जग के जीवन,
अवसन्न पड़े हैं जहाँ कहीं।

इस चित्रण में केवल फेरीवाले का बाह्य चित्र प्रस्तुत नहीं किया गया है वरन् उसके साथ जिस प्रकार का व्यवहार प्यादे करते हैं, वह उस व्यवहार का प्रतीक है जो न जाने किस युग से फेरीवालों के वर्ग के साथ होता रहा है। इस प्रकार की रचनाएं स्वभावतः श्री माणकचन्द जैसे व्यक्ति से कोई साधारणतः आशा नहीं कर सकता, किन्तु जब हृदय की भावना साधारण स्वार्थपूर्ण "स्व" के अत्यन्त क्षुद्र और संकुचित घेरे से निकल कर अत्यन्त उदार और विस्तृत मानवता की परिधि में व्याप्त हो जाती है, उस समय कवि अपनी सामाजिक और आर्थिक भूमि से ऊपर उठकर उस दिव्य आलोक की चर्चा करने लगता है, जिसमें सब प्रकार के भेदभाव और "स्व" के बन्धन शिथिल हो कर गिर पड़ते हैं। उसी उदात्त भाव-भूमि में पहुँच कर कवि ने 'फेरीवाली' की सृष्टि की और उसी के विराट स्वरूप में तल्लीन होकर, अपने देश के हृदय-सम्राट शान्तिदूत पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रति भाव-विमुग्ध होकर कवि ने उस युग नायक को पुकारा :—

रोम-रोम कण-कण में गूँजे
वरदपुत्र हो तुम जगनायक,
स्वर्ण - तूलिका से अब लिख दो,
धरती के हे भाग्य - विधायक।

कवि ने यह अन्तिम चरण अत्यन्त सचेत होकर लिखा है अथवा केवल भाव-धारा में ही यह मांगलिक कामना की है : यह भी नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस विश्व-व्याप्त अविश्वास, द्वेष, संघर्ष, राजनीतिक दुर्भावना तथा भयंकर युद्ध की गूंज में आज सब की आँखें भारत की ओर, भारत के जवाहर की ओर लगी हैं कि वही धरती का भाग्य विधायक बनकर विश्व को, इस त्रस्त विश्व को युद्ध की विभीषिका से मुक्ति दिला दे। यह वह कवि-सत्य है जो काव्य-योग की अवस्था में सहसा अनभिज्ञात रूप से कवि के कंठ से फूट कर विश्व को सावधान करता है, पथ-प्रदर्शन करता है और भविष्य का संकेत देता है।

कवि केवल युग का चारण नहीं है। उसके हृदय में वे कोमल भावनाएँ भी निरन्तर पोषण पाती रही हैं जिनके सहारे मानव-जीवन विश्व की समस्त समस्याओं से हटकर एक प्रकार का सात्विक आनन्द प्राप्त करता रहा है। इन भावों के साथ उमड़ी वे शाश्वत ऊर्मियाँ अभिव्यक्त होती हैं जो उसके व्यक्तिगत मानस को आह्लाद और सौम्य प्रदान करते हुए उसे तृप्त और तुष्ट किए रहती हैं। यह उसका व्यक्तिगत भावात्मक संसार होता है, जिसका वह स्वतः स्वामी होता है और जिसमें वह निर्द्वन्द्व होकर विचरण करता रहता है। इस भाव-जगत में पहुँचकर कविता की भाषा कुछ अधिक प्रौढ़, कुछ अधिक अन्तर्मुखी और कुछ अधिक व्यक्तिगत होने लगती है जिसमें वह कामी स्वप्नमय कल्पना के संसार में नये रूपों की सृष्टि करता है,

परिचित रूपों के स्वप्न देखता है और भाव-जगत में ही उनके संपर्क से मिलन और विरह के खेल खेलता हुआ अपना मनोविनोद करता है। इस प्रकार की दृष्टि में वास्तविक और काल्पनिक दोनों में कोई भेद नहीं रह जाता; क्योंकि दोनों ही मानस-जगत् में पहुँचकर वैसे ही सत्य और वास्तविक हो जाते हैं जैसे प्रत्यक्ष-जगत् में। ऐसी ही कल्पना में रम लेते हुए कवि किसी को सम्बोधित करते हुए कहता है :—

हृदय ने पंख फैलाकर
सँजोये प्यार के सपने
किसे मैं क्या कहूँ ऐसे
पराये कौन हैं अपने
मधुर है प्यार की भाषा
जिसे कहता सदा कोई
गहन गंभीर अन्तर है
जहाँ सोया सदा कोई
प्रलय के ज्वार पर चढ़कर तुम्हारी याद गदराई।

यह सम्बोधन जिसकी स्मृति में किया गया है, वह वास्तविक हो या काल्पनिक, किन्तु उससे कवि को वैसा ही रस मिलता है मानो वह कोई प्रत्यक्ष प्राणी हो। इस प्रकार की गीतधारा में कवि बढ़ते-बढ़ते स्वाभावतः कुछ रहस्यात्मक भी हो जाता है और वह यह समझने लगता है कि विश्व में कोई विशिष्ट आध्यात्मिक अलौकिक प्रेम-क्रीड़ा हो रही है और उसका नायक···

शशि स्निग्ध ज्योति बिखराकर
नभ के अधरों पर हँसता
मधुराग वसन्ती गा कर
मृदु बाल कुमुद भी खिलता।

काव्य की ये सभी धारायें वर्त्तमान हिन्दी काव्ययुग की प्रवृत्तियों की प्रतिनिधि हैं; क्योंकि इनमें रहस्यवाद से लेकर वर्त्तमान जनवाद तक की प्रवृत्तियाँ समा गई हैं। इतना ही नहीं, जहाँ एक ओर अधिकांश छन्द तुक, मात्रा और वर्ण के बन्धनों में बँधे हुए यति और गति के साथ चलते हैं, वहीं 'शान्ति के अक्षय दीप' और 'परिवर्त्तन' में कवि ने अपनी छन्द धारा भी बदल दी है। वह छन्द के बन्धन से स्वतन्त्र होकर पूर्ण मुक्तक छन्द में बह चला है। इस प्रकार 'मधुज्वाल' नाम के

इस संग्रह में कवि ने जहाँ एक ओर अत्यन्त निष्ठा के साथ मधु-संग्रह किया है, वहीं उसने अत्यन्त सत्यता और मनोयोग के साथ युग की ज्वाला का भी प्रदर्शन किया है। मैं युवक कवि को इस सफल प्रयास पर हृदय से साधुवाद देता हूँ और हिन्दी-साहित्य-जगत् में मधुज्वाल का अभिनन्दन करते हुए यह मंगल-कामना करता हूँ कि इनकी यह काव्य-वृत्ति निरन्तर पुष्ट होकर हिन्दी-साहित्य को श्री-समृद्ध करे और अपनी वाणी में और भी अधिक शक्ति लाकर इस युग को तृप्ति देने के साथ-साथ ऐसा संबल भी दे कि युग की पाशविक वृत्तियाँ समाप्त हो जायँ और सारा विश्व स्नेह के अखंड और अबाध सूत्र में बंधकर कल्याण और आनंद के गीत गावे।

सीताराम चतुर्वेदी

विषय सूची

-

चेतना

अधरों से झूल रहे निर्बल मानव की जय के अमर गीत
सपनों की सजी बहारों पर बेजार हृदय की अतुल प्रीत ॥

झंझा के प्रबल थपेड़ों पर
जर्जर जीवन चुपचाप रहा
सागर की मुक्त तरंगों पर
जलयान चपल चुपचाप बहा

चपला की मत्त पुकारों पर जीवन की कौंधी हार-जीत
अधरों से झूल रहे निर्बल मानव की जय के अमर गीत ॥

हो रहे मनुज भू पर लुंठित
हैं छिन्न वीणा के सकल तार
कुछ चीख रहे, कुछ सिसक रहे
अर्घ कौन किसे दे अतुल प्यार

हे देव ! अग्नि का शमन करो, लौटा दो फिर स्वर्णिम अतीत
अधरों से झूल रहे निर्बल मानव की जय के अमर गीत ॥

मनु - पुत्र तिमिर को भेद बढ़े,
ऊषा के ज्योतित प्रांगण में
जन - जन के अन्तर का धागा
बँध जाय प्रीत के बंधन में

माटी की ज्योति अखंड जगे धरती का पौरुष हो अजीत
अधरों से गूंज रहे निर्बल मानव की जय के अमर गीत ॥



साधना की लौ जगाओ

स्निग्ध रजनी में जगी है
प्यार की नव ज्योतिमाला
मूक जीवन की शिला पर
चेतना का नव उजाला

आस की नव प्यास लेकर
द्वार पर नव पर्व आया
शब्द कलियों को पिरोकर
मुक्त मधु ने गीत गाया

भूमि की किरणें सलोनी
क्षितिज तक लहरा रही है
राह पर खुद जीत अपने
आप स्वागत गा रही है

अब न रुकने का समय है
साधना की लौ जगाओ
बढ़ चलो कर्त्तव्य-पथ पर
जय-विजय के गीत गाओ।

प्यार !

खिली जब चाँदनी, दृग में तुम्हारी याद घिर आई !

(१)

घुमड़ घन-राग घिर आए,
भुवन पर प्यार लहराए;
तरंगित स्वप्न पर सहसा—
तुम्हीं थे, जोकि बल खाए;
मगर यह खेल मत खेलो,
सहारा भर मुझे दे दो;
ज्वलित कर दीप स्नेहिल तुम
सजग होकर मुझे दे दो;
भ्रमित होकर न भूलूँ मैं तुम्हारी प्रीति अरुणाई !

(२)

हृदय ने पंख फैलाकर
सँजोये प्यार के सपने;
किसे मैं क्या कहूँ, ऐसे—
पराये कौन हैं—अपने;

मधुर है प्यार की भाषा,
जिसे कहता सदा कोई;
गहन गंभीर अंतर है
जहाँ खोया सदा कोई;
प्रलय के ज्वार पर चढ़कर तुम्हारी याद गदराई।

(३)

थिरकती चाँदनी आकर
गले में फूल-सी मिलती,
तुम्हारा प्रेम पाकर नव
कुमुदनी खिलखिला हँसती;

मधुर जब चाँदनी उतरी,
हृदय का गीत मुस्काया,
नयन में खो गई आभा
किसी का रूप अकुलाया;
खिली जब चाँदनी, दृग में तुम्हारी याद घिर आई।

गीत !

प्राची में प्रमुदित हुआ धवल साकार स्वप्न लेकर वसन्त।

नव ज्योति कमल जगकर खिलता
सपने से जग खुलकर मिलता
दिशि - दिशि में गुंजित स्वर विहंग
उर में पुलकित शत - शत उमंग

रति के स्नेहिल सुर जाग उठे विहंसा जब नूपर मदनकन्त॥

सिहरा समीर, काँपी कलियाँ
विसुधे भावों की रँगरलियाँ
कलि पर अलि का गुंजार जगा
कण-कण में मादक प्यार जगा

मानस का चेतन ज्वार जगा, जड़ता के तम का हुआ अन्त॥



जनतंत्र-पर्व

जागा नवयुग का सूर्य धवल
जग उठा युगों का सुप्त तार
आँखों का व्योम हुआ कुसुमित
कण-कण को देने अमिय प्यार

हिल रहा आज लो लौह दुर्ग
साँसें गिनता साम्राज्यवाद
हिंसा की हत्या हुई यहाँ
मानव का गूँजा सिंहनाद

वैभव के तारे टूट गिरे
आँचल में धरती के अमोल
जीवन - सरिता की सिहरन में
गूँजा दिशि-दिशि का अभय बोल

संबल धरती को मिले सहज
जब अन्तरतल में जगे ज्वाल
जिस ओर चढ़ो तुम युगनायक!
रुक जाय भयाकुल प्रलय-काल।

राही से

आज गा दो, गीत शाश्वत जाग कर हे सुम कविवर!
काल-मे तूफान में भी तुम बढ़ो बन मुक्त निर्झर !!

स्वर्ग का सपना सँजोकर
पंथ पर अपने निरंतर;
तुम बढ़ो, शत शूल पथ के
खिल चलें मधु फूल होकर;

रो रहा जीवन अचंचल
भग्न यौवन पर सिसक कर;
मृत्यु के आक्रोड़ में है
जिन्दगी के गीत का स्वर;

यह प्रलय की रागिनी क्यों
गूँजती भूतल-गगन से,
आज नगपति काँपता क्यों,
सिन्धु क्यों है क्षुब्ध मन से,

सृष्टि के आरम्भ से ही
साथ करुणा का लगा है,
आज अन्तर-चेतना पर
राग जड़ता का जगा है;

माँगता दिग्-दिग् तुम्हारे
भाव का आलोक-सम्बल,
मूक मानवता बुलाती—
'जाग शाश्वत भूमि के बल';

ली जगाओ एक ऐसी, टिक न पाये रात का तम!
भूमि पर मुखरित रहे नित सृष्टि का मधुज्योति-सरगम!!



कौन हो ?

पद-पद्म तुम्हारे छूकर
उमगी नव ज्योतिर्धारा
शत-शत जन हैं करते
स्वागत प्रिय, आज तुम्हारा

झंझा के झोंकों में भी
आशा का दीप जलाते
तुम सत्य शिखर पर चढ़कर
सपनों का साज सजाते

घन-गहन तिमिर के उर में
जग कर तुम ज्योति जगाते
पतझर के हारे दल पर
मधु-गीत विजय के गाते

जगमग जुगनू-से चमकें
मधु भाव तुम्हारे मन में
अम्लान फूल-से विहँसें
मनु-पुत्र प्रीति के छाए में।

मिलन

काजल-सी काली रजनी
उड़ दूर देश से आती
स्वागत में दीप जगाकर
प्रियतम को गले लगाती

शशि स्निग्ध ज्योति बिखराकर
नभ के अधरों पर हँसता
मधु राग बसन्ती गाकर
कुमुदों का परिमल खिलता

छलिया अतीत अनजाने
दृग में धूमिल-सा लगता
सुधि-सपना मात्र तुम्हारा
स्मृति-दीप सरीखा जगता

खोया-सा ढूँढ रहा हूँ
विचलित मैं तुम्हें हृदय में
कितने ही दर्द तड़पते
करुणा के मूक निलय में

जाने मन क्या-क्या सुनता
आशा की कैसी वाणी?
निर्मम धरती पर पलती
मानव की करुण कहानी!

है काल-ग्रसित कितनी ही
कलियों की मुग्ध जवानी
कर याद आज यह किसकी
बहता आँखों से पानी।

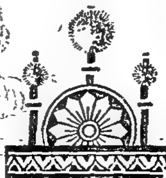
चपला-सी व्यथा चमकती
मन लीन उसी में होता
अंतर का भाव सलोना
पलकों में अपने रोता;

मेरे मन के सागर में
मधु ज्वार उमड़ते पल-पल,
स्वच्छन्द विचरने के हित
आशा अकुलाती प्रतिपल।

कैसे प्रिया अंकित कर दूँ
विगलित मैं करुण कहानी,
बस पाद-पद्म पर तेरे
अर्पित पलकों का पानी।

आँसू-सी शबनम बूँदें
दिखतीं फूलों के दल पर
पतझर की करुण लकीरें
उत्ताल सिंधु-हलचल पर ;

नित चाँद-सूर्य से बरसे
पीयूष-प्रेम की धारा
फिर छिन्न स्वप्न जुड़ जाए
ज्यों गंग-जमुन की धारा।



उल्लास

मंजुल मन के ओ मूक मीत !

तिल-तिल कर तू जल-जलकर
कर दे आलोकित दिग्दिगन्त,
है आज व्यथा का बाँध तोड़
होता पुष्पित लो नव वसन्त ;
मंजुल मन के ओ मूक मीत !

आशा कैसी यह धधक रही
मंजुल मन में फिर बार-बार,
विद्युती है मन में स्निग्ध ज्योति
हँसते अंतर के रुद्ध द्वार ;
मंजुल मन के ओ मूक मीत !

कर रहा कौन यह तूर्यनाद
साकार स्वप्न हो रहे आज,
यह कौन सींचता है मन को
सजने प्राणों के मंदिर साज ;
मंजुल मन के ओ मूक मीत !

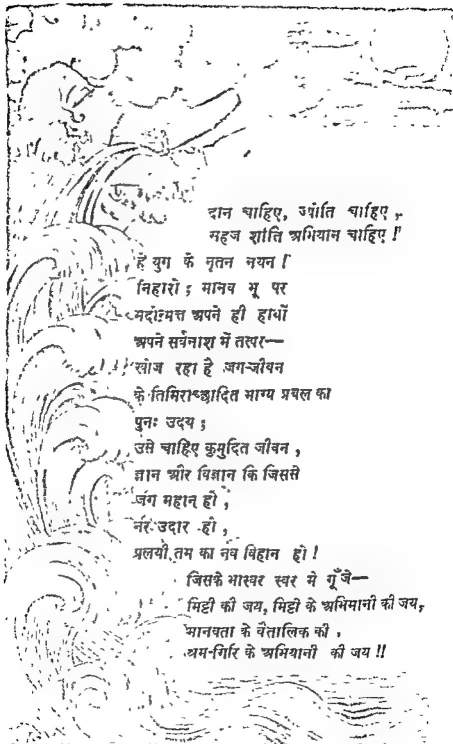
शांति के अक्षय दीप

शांति के अक्षय दीप जले !

काल भयंकर अड़े, चढ़े ;
तूफान शीश पर आए,
घन - अंधकार उमड़े
विघ्नों के घन बरसाए ;
पर, तेरा पंथ प्रशस्त रहे ;
तेरी लौ से ज्योतिर्धारा—
निविड़ तिमिर के सघन
हृदय में धरा-पुन ! अजस्र बहे !

हे युग-नायक !
तब-तब जग का कलुष मिटा ;
जब-जब तेरा तना कान तक
निर्भय जीवन-प्रलयी शायक !!

आज पुनः जीवन में जागो—
जड़ता अनय - राग में पागी ;
जीवन के इस सघन तिमिर को ,



दान चाहिए, ज्योति चाहिए,
महज शांति अभियान चाहिए !"

हे युग के नूतन नयन !
निहारो ; मानव भू पर
मदोन्मत्त अपने ही हाथों
अपने सर्वनाश में तत्पर—
खोज रहा है जग-जीवन
के तिमिराच्छादित भाग्य प्रबल का
पुनः उदय ;
उसे चाहिए कुसुमित जीवन ,
ज्ञान और विज्ञान कि जिससे
जग महान् हो ,
नर उदार हो ,
प्रलयी तम का नव विहान हो !
जिसके भास्वर स्वर में गूँजे—
मिट्टी की जय, मिट्टी के अभिमानी की जय,
मानवता के वैतालिक की ,
श्रम-गिरि के अभियानी की जय !!

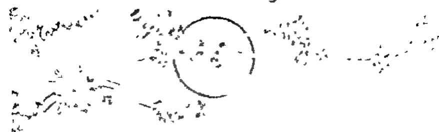
विनोबा के प्रति

संत भावे भावनाकुल
क्रांति का संदेश लाया,
मूक जग के व्यथित कण-कण
को कुसुम-सा है खिलाया;

प्रेम का मधु-मंत्र देकर
प्रलय को परिशांत करता
भारती का कष्ट हरने
के लिए बेचैन रहता

राष्ट्र के दिग्भाल पर चिर
स्नेह का मधु पुञ्ज बनकर
जग रहे नभ पंथ पर शुभ
प्रीतिमय नव कुञ्ज बनकर

रो रहा है सिंधु छल-छल
काँपता हिमराज थर-थर
रो रही बेजार धरती
वक्ष में अंगार लेकर



चीरा है सब ओर—जागो,
शान्ति का सपना सजा दो
विश्व में शुभ क्रांति ला दो
अर्थ नरता का बता दो।

पुण्य वेला आ गई, लो
राष्ट्र के उत्थान, जागो!
नाश के नभ पर विहँसते
सृष्टि के दिनमान जागो!

स्वर्ण चित्रों में लिखी है
प्यार की पारस-कहानी,
व्योम दीपक-सी जगेगी
एक दिन तेरी निशानी!

दिव्य भिक्षु द्वार पर आया
ओ कुबेरो, दान दे दो;
खिल उठेंगी मधुकलियाँ
जाग कवि, मधुगान दे दो।

शान्ति-दूत

स्वर्ण रतन से भरे कलश को
त्यागो, खोलीं आँखें प्यासी
जगत शान्ति से जय करने को
उद्यत हुए आज संयासी

रोम-रोम कण यों गूँजे
वरद पुत्र हो तुम जगनायक
दिव्य तूलिका से लो लिख दो
धरती का सौभाग्य विधायक !

युवा-युवक में वृद्ध-वृद्ध में
कल्पवृक्ष भारत-माता के
लाल जवाहर चाचा तुम हो
दुख-हरता पीड़ित भारत के

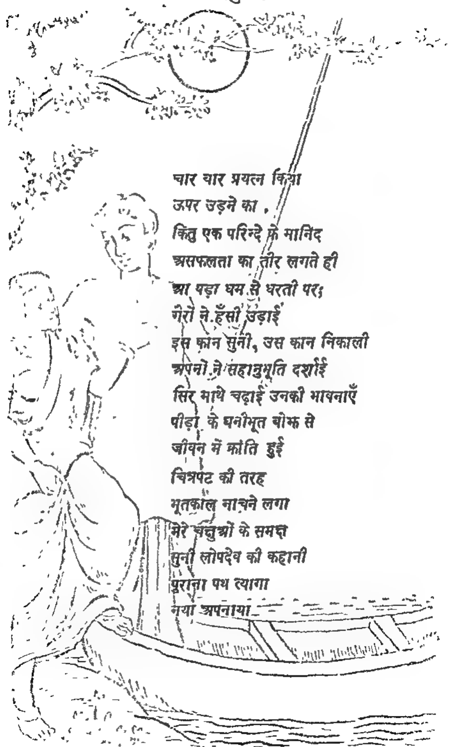
ग्राम-ग्राम औ नगर-नगर के
जनजीवन में प्रतिपल जाकर
शांति संदेश सुनाते प्रतिक्षण
अपना-सुख सर्वस्व गँवाकर !



परखे कोई लाल जवाहर
देखे छवि जीवन की न्यारी
प्रतिपल भारत माता जिस पर
बलि-बलि जाती हैं बलिहारी ।

परिवर्त्तन

वसंत ऋतु
मनाती है पृथ्वी अपने अजिर में ;
वह अपनी श्री से
वन को, लता को, कुंज को
लहलहा देती है ;
धरती माता
पहनती है वासंती साड़ी
तरु-तरु में विहँस रहा
नव पल्लव ;
प्रकृति का आनन
प्रफुल्लित, विकसित और मंदहास्य युक्त
कानन में, कछार पर, पहाड़ पर
बहती है
शीतल मंद-सुगंध पवन ;
किंतु मेरा जीवन
पतझड़ ही पतझड़ !
एक, दो, तीन—नहीं



बार बार प्रयत्न किया
ऊपर उड़ने का ,
किंतु एक परिन्दे के मानिंद
असफलता का तीर लगते ही
आ पड़ा धम से धरती पर;
गैरों ने हँसी उड़ाई
इस कान सुनी, उस कान निकाली
अपनों ने सहानुभूति दर्शाई
सिर माथे चढ़ाई उनकी भावनाएँ
पीड़ा के घनीभूत बोझ से
जीवन में क्रांति हुई
चित्रपट की तरह
भूतकाल नाचने लगा
मेरे चक्षुओं के समक्ष
सुनी लोपदेव की कहानी
पुराना पथ त्यागा
नया अपनाया

मैं उड़ा—असफलता
के बाणों को साहस ने
बीच ही में कुंद कर दिया
मेरा जीवन भी हो गया
पत्ती के समान
हल्का, स्वच्छंद, स्वतंत्र;
जीवन में ग्रीष्म आता है
डाल-डाल फूलों से लद जाती है
वर्षा आती है
पृथ्वी को मरकत की छवि दे जाती है
शरद की चाँदनी कहती है
क्या इस विभा पर भी प्रियतम न रीझेंगे ?
हेमन्त का समीर
मंद हास में कह जाता है
हिम्मत न हारो
जीवन में आया अब तक
पतझड़ ही पतझड़

उसने भावनाओं के पत्ते तोड़ गिरा दिए
पीड़ा के घनीभूत बोझ से
जीवन में क्रांति हुई
मैंने जीवन में ऋतुराज का
नव स्वप्न देखा
पृथ्वी मनाती है अपने अजिर में वसंत ऋतु
अब है मेरे जीवन में आई वसंत ऋतु ।



स्टेशन रोड,

आह्वान

मौन मरुधर विकल विह्वल
मूक खण्डहर रो रहा है
क्या पता किस ठौर मेरा
हास का क्षण सो रहा है !

एक दिन मैं झूमता था
देश का अभिमान बनकर
बाट मेरी जोहता था
लक्ष्य खुद तूफान बनकर

राष्ट्र के आकाश पर जब
थी घिरी काली घटाएँ
जब लगी ज्वाला उगलने
स्तब्ध-सी चारों दिशाएँ

चेतना बोली जगी हूँ
वेदना निश्चय घटेगी
ज्योति हूँ ऐसी कि जिससे
रात मावस की कटेगी

मेदिनी फिर रो रही क्यों
बोल मेरे स्वप्न जगकर
मूक मरु के दृष्टि-पथ में
आज बनकर तृप्ति जलधर

आज फिर आह्वान, मेरे
गीत के अभिमान जागो
निर्बलों के बल, उपेक्षित
शक्ति के वरदान जागो !



कवि से

मरणशील जीवन में जगकर
नई चेतना ज्वार जगा दो
सत्य सुघर दर्शन के तरु पर
भावों की लतिका लहरा दो;

दूर छितिज के अरुण भाल पर
चमके कंदन आज तुम्हारा
बहे विषमता की तमसा में
समता की प्रिय ज्योतिर्धारा।

जीवन के कंकटमय पथ पर
गाओ गायक, फूल खिला दो।
जन-जन के मन की बगिया में
चेतन भाव-सुमन विहँसा दो॥

करुणा जाने कहाँ छिपी है
मानव तड़प-तड़प कर रोता
आज प्यार पग-पग पर बिकता
नयन-नयन का मोती खोता;

पशु-पक्षी चिंघाड़ रहे हैं
महारुद्र का ताण्डव होता
अभिशापों से मनुज दबा है
भव का आज पराभव होता

लो विज्ञान बना नरता के
जीवन-धन का ही संहारक
यह 'युग-धर्म' बना है केवल
पशु-बल का ही प्रबल प्रचारक

गिरता ढहकर गढ़ समता का
दुर्ग सभ्यता का अनजाने
महानाश के इस क्रंदन में
चला मनुज कुछ गीत बनाने

किंतु यहाँ पर गूँज रहा स्वर
महामृत्यु के जिस ताण्डव का
उसमें कैसे गीत जगेगा
अरुणोदय के नववैभव का

मनुज सभ्यता संस्कृति सारी
काँप रही है अपने भय से
कैसे चाँद - सितारे चमकें
टूट चुके जो नील निलय से !

कवि तुम जागो ! अचल हिमाचल
जैसा भाव तुम्हारा जागे
इंगित पर चुपचाप तुम्हारे
अंधकार की जड़ता भागे;

दीनों की साँसों से कम्पित
मधुर इला का मरकत आँचल
ज्योति - पुञ्ज से मधुमय राही
अमिय प्रेम-रस भर दो पल-पल

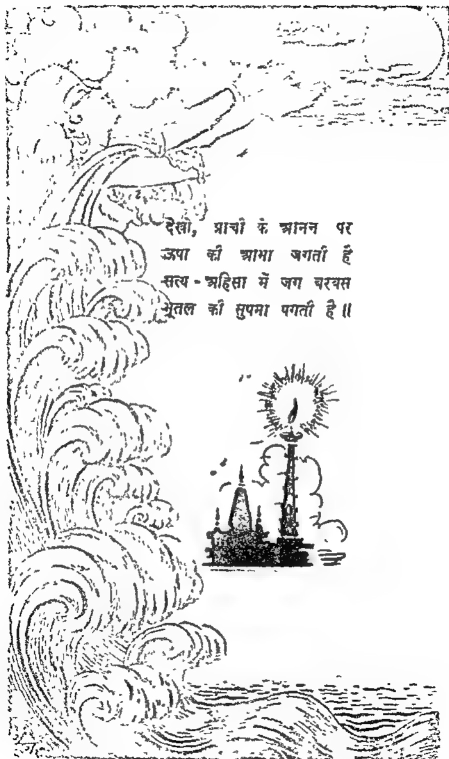
उमड़ रहा स्वर कल-कल छल-छल
सागर आज पुकार रहा है
जड़ता की निष्क्रियता खोकर
जाग आज संसार रहा है.

प्रजातंत्र की ज्वाला धधके
मिटें अतुल साम्राज्य धरा के,
बँधें प्रीत में जन-जन के मन
कलुष मिटें सब वसुंधरा के

तूर्यनाद कर जागो कविवर
भू पर मधु-उल्लास खिला दो,
नई साधना की बेला है
जग को प्रेमिल गीत सुना दो।

भू पर नूतन पंथ सृजन कर
जग को नव आदर्श दिखाओ,
अश्रु-भरे लोचन में भू के
जीवन का उत्कर्ष दिखाओ;

करुणा की रस-धार बहे प्रिय
तोड़ पुतलियों की जड़-कारा
आकुलता की व्यथा-कथा पर
विहँसे सुषमित जीवन सारा,



देखो, प्राची के आनन पर
ऊषा की आभा जगती है
सत्य-अहिसा में जग बरबस
भूतल की सुषमा पगती है ॥

संदेश

राष्ट्र के युग-नायकों का
है यही वृत्तान्त सारा,
आग चौड़े वक्ष में, औ
लोचनों में सिंधु खारा।

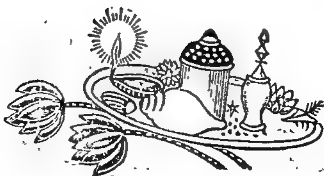
सर्वहारा वेश में जग
रो रहा मन दीन-विह्वल
छिप गई देवी सफलता
अब विफलता के चरण-तल।

नित नई उठती समस्या
कौन उसका हल बतावे
डगमगाती मनुजता को
शांति के पथ पर चलावे

आज मानव में मनुजता
का नया अंकुर खिला दो
सत्य, शिव औ सुन्दरम् का
गीत गायक आज गा दो।

हो न मानव दीन जग में
प्रेम का बल आज दे दो
आज उसकी साधना को
शुभ क्षण का साज दे दो

क्रांति के हर तार पर प्रिय
शांति का सरगम जगाओ,
सभ्यता का सूर्य चमके
एक दीपक राग गाओ ॥



फेरीवाला

फेरीवाला कंकाल एक
प्रस्वेद नदी में स्नान किए
चलता धीरे-धीरे पथ पर
नव-जीवन का अभिमान लिए

घर में हैं केवल आठ जीव
खाने को पास नहीं पैसा
तुल्लापट्टी में माल बेंच
कर भी पाता मुर्रा जैसा

तन को ढँकने की बात दूर
खाने भर को भी अन्न नहीं
माँ के प्यारे जग के जीवन
हैं पड़े सड़े अवसन्न यहीं;

लेकर कुछ लीची क्षीणकाय
पहुँचा जब तुल्लापट्टी में
कर कर पुकार न्योता देता
'ले लो लीची दो पैसे में'

अच्छी लीची का सुन बखान
बाबू बोला यों भौं सिकोड़,
कुछ कर सस्ती चुन-चुन दे दो
वरना लो रस्ता नाक तोड़

हुज्जत करते कुछ ले लेते
आते, जाते इक देख नजर
मौसम की पहली लीची है
बढ़कर ले लो दो हाथ डगर

तुलवा लीची, इक पाव सेर
तत्पर ज्योंही पैसा देने
बाबू जेबों में हाथ डाल
आता हल्ला ले चले माल

प्यादे का सादा वेश देख
छिपना चाहता फेरीवाला
प्यादे को रौरव क्रूर जान
ढूँढ़े शरणागत वह निबला

लुकता - छिपता यों उसे देख
नाक लिए प्यादा आता
हाव - भाव यों देख दूत
धीरे - धीरे अपने बढ़ता

लपक-झपक से कुत्र लीची
धरा अधर मुख चूम रहे
मालिक स्वर से यों गिर करके
व्यंग्य क्रूर पर कर रहे

धक्का पेली अरु ढेलों से
फट गया जीर्ण चोला उसका
धरती माता सा हुआ छिन्न
जो भाव सुघर-धन था उसका



तुलवा लीची इक पाव सेर
तत्पर ज्योंही पैसा देने
बाबू जेबों में हाथ डाल
आता हल्ला ले चले माल

प्यादे का सादा वेश देख
छिपना चाहता फेरीवाला
प्यादे को रौरव क्रूर जान
ढूँढे शरणागत यह निबला

लुकता - छिपता यों उसे देख
नाक लिए ज्यादा आता
हाव - भाव यों देख दूत
धीरे - धीरे अपने बढ़ता

लपक-झपक से कुछ लीची
धरा अधर मुख चूम रहे
मालिक स्वर से यों गिर करके
व्यंग्य क्रूर पर कर रहे

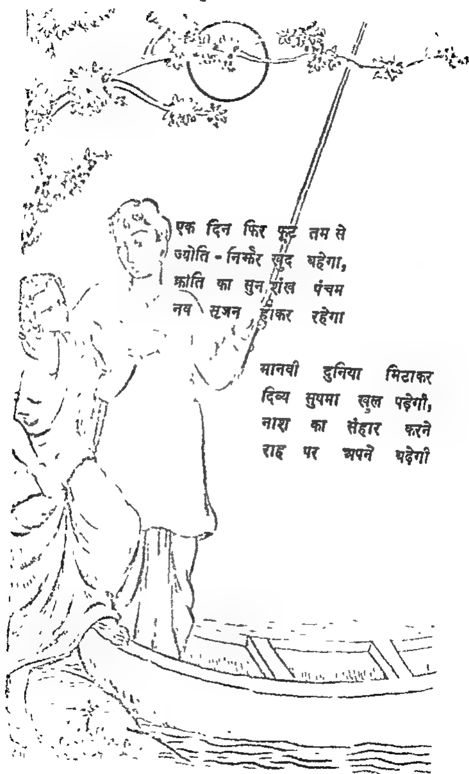
धक्का पेली अरु ढेलों से
फट गया जीर्ण चोला उसका
धरती माता सा हुआ छिन्न
जो माघ सुघर-धन था उसका



विश्व-प्रपंच

प्रलय के शोले सुलगते
व्यथित है संसार सारा
राह भूले पथिक को अब
कब मिलेगा लक्ष्य प्यारा ?

आज शोषण का प्रभंजन
विश्व को झकझोरता है,
शांति-राग का पंख कोई
वधिक निर्मम तोड़ता है



एक दिन फिर फूट तम से
ज्योति-निर्झर खुद बहेगा,
क्रांति का सुन शंख पंचम
नव सृजन होकर रहेगा

मानवी दुनिया मिटाकर
दिव्य सुषमा खुल पड़ेगी,
नाश का संहार करने
राह पर अपने बढ़ेगी



देखता हूँ आज जग में
छा रही है दिव्य लाली
द्वेष की ज्वाला भभकती
विश्व में संहार वाली;

भय दिखाकर लूटते सब
बाहुबल की है प्रमुखता
वृत्तियों की सात्विकी पर
हँस रही है कटु विषमता;

आप अपने से मनुज का
हो गया है भाल नीचा
क्या पता किस ओर किसने
वेदना का तार खींचा

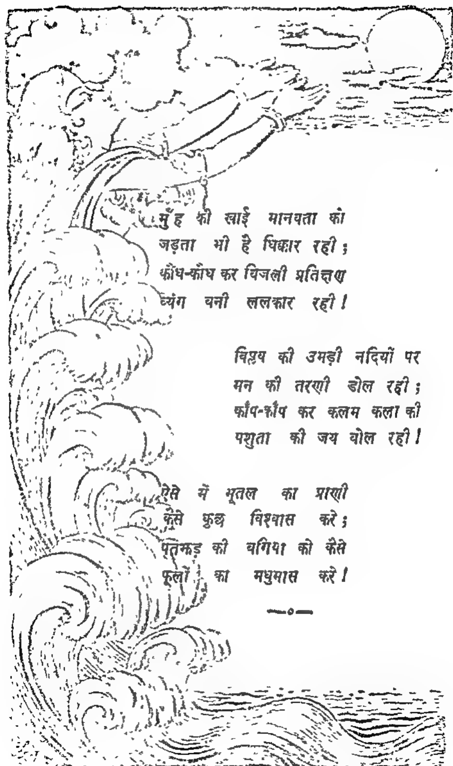
कलियुगी वीणा सँभाले
आज जगती गा रही है,
क्रूर हिंसक वेश में ही
सभ्यता-श्री आ रही है।

ठग रहे इस भूमि को सब
यह मनुजता रो रही है,
नाश का विष-बीज कोई
शक्ति भू पर बो रही है।

मूक क्रन्दन

आज दुखों के घटाटोप में
मुझको कौन पुकार रहा?
दूर क्षितिज की घिरी माँग में
कुंकुम कौन सँवार रहा?

मुक्त भाव से ताण्डव करती
निर्विरोध यह दानवता;
आज साधना की समाधि पर
सिसक रही है मानवता!



मुँह की खाई मानवता को
जड़ता भी है धिक्कार रही;
कौंध-कौंध कर बिजली प्रतिक्षण
व्यंग बनी ललकार रही!

विप्लव की उमड़ी नदियों पर
मन की तरणी डोल रही;
काँप-काँप कर कलम कला की
पशुता की जय बोल रही!

ऐसे में भूतल का प्राणी
कैसे कुछ विश्वास करे;
पतझड़ की बगिया को कैसे
फूलों का मधुमास करे!

—०—

वेदना

उड़ गया है आज पंछी
नीड़ नीरव हो गया
वेदना की वेदिका पर,
साध का दल सो गया;

आज जीवन भार लेकर
लाश-सा ही चल रहा
जग न पाई जो कभी, उस
शाम-सा हूँ ढल रहा!

स्वर्ण रत्नों से सुसज्जित
गेह भी झंखाड़ है;
राह पर अनुल्लंध्य बाधा
अड़ा विकट पहाड़ है!

कौन अब पहुँचाएगा यह
नाव मेरी तीर तक?
आँख कैसे जग सकेगी—
साध की तस्वीर तक?

संघर्ष

दिल की धीमी धड़कन-सा
करता है कौन इशारा;
आँसू का महल सजाकर
किसने है मुझे पुकारा!

काँटों से भरी हुई है
जीवन की बगिया सारी
चुन-चुन कर जिसको करते
बढ़ने की सब तैयारी!

सुख-दुख के तार सजा कर
बजती जीवन की वीणा,
जिसकी तान जगा कर
है सीख रहा नर जीना!

—०—

अश्रु-जल

मन - मंदिर में गूँज रहा
वीणा का मधुमय आज गान
स्वर्णिम स्वप्नों में विहँस रहा
अपने नव-जीवन का विहान !

किसके नीरव व्यंग-स्पर्श से
झंकृत हो उठते प्राण - तार ?
है कौन जगत में इस जीवन से
अपरिचित कर दे अमिय प्यार ?

जीवन-पथ का वह क्षीण दीप
किसने झंझा में जला दिया ;
सुख सपनों में खोए मधु को
किसने है पतझर दिखा दिया !

यह विकल साध मेरे मन की
क्षण-क्षण में व्याकुल पीर बनी;
गुरु के श्रीचरणों पर मेरी
रेखाएँ सहज अधीर बनी !

विह्वल

ओ मेरे आराध्य देव !
तुम दूर भगे क्यों जाते हो ?
आज पड़ा जब काम तभी
तुम चुपके क्यो कतराते हो ?

पार क्षितिज के दूर देश से
वंशी जब गुहराती है ;
तब जाने क्यों विकल रागिनी
आँखों से ढुल जाती है ?

सपनों के मेरे माधव आकर
नगरी ही यह भूल गए;
सागर में मेरे नाव विरल निज
भूल आज मधु कूल गए!

लो, गुहार सुन लो माधव!
आकर निज दरस दिखा दो!
टूटी, मन की इस वीणा को
फिर से तुम जरा सजा दो!!

